भगवत् कृपा

THE DIVINE GRACE

महाप्रभु स्वामिनारायण प्रणीत सनातन, सचेतन और सक्रिय गुणातीतज्ञान का अनुशीलन करने वाली मासिक सत्संगपत्रिका

वर्ष-8, अंक-3-10	सम्पादक : साधु मुकुंदजीवनदास गुरु ज्ञानजीवनदासजी	वार्षिक चन्दा-10.00
मार्च ' 85	मानद सहसम्पादक: श्री महेन्द्र दवे-श्री विमल दवे	प्रति अंक : 1.00

मूल अक्षरमूर्ति श्री गुणातीतानंदस्वामी

यह 1985 का वर्ष गुणातीत वर्ष है...स्वामिनारायण सम्प्रदाय के इतिहास में यह स्वर्णिम वर्ष है क्योंकि इसी वर्ष में मू.अ.मू. गुणातीतानन्दस्वामी का द्विशताब्दी महोत्सव खूब भव्यता से मनाया जा रहा है। गुणातीत कल्पवृक्ष के फलने-फूलने का स्वर्णयुग आ गया है....प.पू. काकाजी के शब्दों में–अब गुणातीत संकल्प काम करेगा। समय-समय पर कई अवतार पुरुष-राम, कृष्ण, यीशु, महावीर, शंकराचार्य आये लेकिन अपने पीछे कोई दिव्य विरासत–अखंड ज्योति हमेशा के लिए नहीं छोड़ गये। जब तक वे जीवित रहे, उन्होंने अपने ढंग से मानव जाति को सुखी होने का रास्ता बताया। पर उनके जाने के बाद वह संस्था विकसित नहीं हो पाई।

200 साल से अधिक वर्ष पूर्व पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान श्री स्वामिनारायण पतन की गर्त में अधोगति की ओर जाते मानव को सभ्य करने, संस्कारी बनाने स्वयं मानव स्वरूप में अवतरित हुए;इससे भी अधिक वह अपने साथ-साथ मू.अ.मू. गुणातीतानन्दस्वामी को लेकर आये और गुणातीतभावना में रहते संतों द्वारा अपना प्रागट्य सदा के लिए अखंडित कर दिया। प्रभु की इस अनुपम करुणा वात्सल्यता को हम कैसे भूल पायेंगे? और 200 साल से यह पृथ्वी स्वामिनारायण भगवान के स्वरूपों द्वारा सदा सुहागिन ही है। वासना, स्वभाव, काम, क्रोध, लोभ, हठ, मान, ईर्ष्या जैसी भयंकर वृत्तियों के बंधन से मुक्ति दिलाने–जो कि स्वप्रयास व लाख साधन करने से भी संभव नही, वह केवल ऐसे प्रभुधारण किए सच्चे संत को हाथ जोड़ने मात्र से सुलभ कर दिया !

महाराज स्वयं एक अनोखा प्रकाश लेकर आये और एक दिव्य ज्योति बनकर अक्षरधाम जाने से पूर्व मू.अ.मू. गुणातीतानन्दस्वामी में समा गये। इस प्रगट स्वरूप की महिमा स्वयं महाराज ने इस प्रकार कही थीः "स्वामी ! जूनागढ़ में आपका जो दर्शन करेंगे, जो आपका

समागम करेंगे, जो आपके साथ रहेंगे, जो आपको सहाय होंगे उन सबकी करोड़ों जन्मों की कमी मैं एक जन्म में ही नष्ट कर दूँगा।'' मानव जाति को सहज में कैसी अनोखी भेंट !

सही दृष्टि से देखा जाये तो यदि गुणातीतानन्दस्वामी धरातल पर नहीं आते तो पूर्ण पुरुषोत्तम सहजानन्दस्वामी की मानवजाति को सर्वदा सुखी करने की कल्याणयोजना इतनी सरल नहीं हो पाती। आश्चर्य तो यह है कि 200 साल बीत जाने के बाद भी उनके आदर्श, उनकी बातें आज के युग में भी क्रान्ति लाने के लिए काफी हैं। उन्होंने केवल आध्यात्मिक विकास ही नहीं किया, अल्प संबंध में आए हुओं को भी कल्याण का अभयदान नहीं दिया, अपितु जड़ से चेतन किया, आसुरी, वृत्ति वालों को देव बनाया,—स्वभाव, वासना आदि के गटर में पड़े जीव को सही अर्थ में जीना सिखाया। महाराज ने स्वयं कहा था, ''अक्षर के बिना मेरा अस्तित्व नहीं है।''

1985 गुणातीत वर्ष की शरद्पूर्णिमा आ रही है। इसी भावना से मू.अ.मू. गुणातीतानंद स्वामी की साधुता, प्रभुधारकता, भक्तवत्सलता, सेवावृत्ति आदि गुणों को प्रदर्शित करते हुए उनके जीवन के प्रसंगों को लेकर पठन-अध्ययन करेंगे.....। जिससे हमारा जीवन धन्य हो सके और हम प्रत्यक्ष मानव-स्वरूप में विचरण करती हुई भू की मूर्तियों-प.पू. काकाजी, प.पू. पप्पाजी, प.पू. हरिप्रसादस्वामीजी. प.पू. महंतस्वामीजी को उस दिव्य दृष्टि से पहचान पायें, जिस दृष्टि से गुणातीतानन्दस्वामी ने महाराज को सांगोपांग धारण कर लिये थे।

'पूत के पांव पालने में ही नजर आते हैं....' यह कहावत मू.अ.मू. गुणातीतानन्दस्वामी के बाललीला के इस प्रसंग से चरितार्थ होती दिखाई पड़ती है। जिस प्रकार बचपन में भगवान श्री कृष्ण ने यशोदा माँ को अपने मुख में समग्र ब्रह्मांड का दर्शन कराया था....उसी प्रकार गुणातीतानन्दस्वामी ने करा।

मू.अ.मू. गुणातीतानन्दस्वामी का बचपन का नाम मूलजी था। मूलजी जब चार वर्ष के थे, एक दिन अपनी माँ से उन्होंने कहा कि ''माँ, मुझे दूध दो।'' तो माँ ने कहा कि ''बेटा, ठाकुरजी को लगाकर देती हूँ।'' यह सुनकर मूलजी ने हँसते-हँसते कहा, 'माँ, ठाकुरजी तो मेरे हृदय में अखंड विराजमान हैं, मैं तुम्हारे गर्भ में था तब और उससे भी पहले का मेरा ठाकुरजी के साथ संबंध अखंड है, मैं खाना खाता हूँ तब मेरे साथ ठाकुरजी ही खाना खाते है, मैं सोता हूँ तो ठाकुरजी साथ ही सोते है इसलिए मैं दूध पीऊंगा तो मेरे साथ ठाकुरजी भी दूध पीयेंगे। बाहर के ठाकुरजी और मेरे अन्दर के ठाकुरजी एक ही हैं।' माँ तो बालक मूलजी के मुँह से ऐसी ज्ञानपूर्वक वाणी सुनकर स्तब्ध हो गई। मूलजी की गहरी भाषा के आशय को तो वह नहीं समझ पाई पर मूलजी की ठाकुरजी के साथ एकता की—संबंध की बातें सुनकर उसे लगा कि मूलजी ठाकुरजी का निवास मूल धामरूप अक्षर है। उसने तुरन्त मूलजी को दूध लाकर दिया। मूलजी माँ के मुंह की ओर देखते-देखते हँसते-हँसते दूध पी गये। माँ ने बालक के हाथ से दूध का खाली कटोरा वापस लिया और जैसे ही मुड़ने लगी तो ठाकुरजी की ओर उसकी निगाह गई....तो ठाकुरजी के होठों पर दूध की हल्की सी रेखा दिखाई पड़ी....माँ के आनन्द की तो सीमा न रही !

इस प्रकार गुणातीतानन्दस्वामी ने अपने व श्रीजी महाराज के अद्वैत संबंध को चार वर्ष की

अल्प आयु में ही स्पष्ट कर दिया था।

आठ वर्ष की आयु में उन्होंने एक और सत्य दर्शन अपनी माँ को कराया।

गुणातीतानन्दस्वामी को महाराज का अखंड दर्शन था। उस दर्शन के आनन्द से उन्माद अवस्था में आकर एक बार उन्होंने कहा—''माँ ! माँ ! पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान स्वयं यहाँ आयेंगे। तुम्हारे हाथ का थाल खायेंगे। तेरा तो बहुत बड़ा भाग्य है।'' गुणातीतानन्दस्वामी को महाराज का विचरण आदि आँखों के सामने चलचित्र की भाँति दिखाई पड़ता था। कैसा पूर्व का प्रभु और भक्त का निराला संबंध ! भोली माँ को मूलजी का अपूर्व भक्ति भाव, भगवान के साथ अखंड संबंध—लगाव की गहराई कहाँ से समझ आये? माँ को कई बार लगता कि मूलजी कहीं पागल न हो जाये। तो भूल-भुलैया में भटकती माँ को बातों का विषय बदलकर मूलजी अपनी माँ को स्वस्थ कर देते थे। और खेल-खेल में अपना स्वरूप भी साथ-साथ स्पष्ट करवा रहे थे।

इसी प्रकार एक और प्रसंग जो उनके बचपन से ही उन्हें जीवात्मा, परब्रह्म, माया, आत्मा आदि के तब मित्रों ने कहा कि बारे में पूर्णतया जानने वाले समर्थ साधु के रूप में प्रतिष्ठित कर देता है।

एक बार मूलजी अपने मित्रों के साथ खेतों में जा रहे थे तो रास्ते में एक कुआं आया। सब बालक जिज्ञासावश कुएं में पानी देखने रुक गये। मूलजी भी साथ में ही थे। कुएं के पानी पर हरी काई की छतरी जैसी छाई हुई थी जिससे नीचे का पानी साफ नहीं दिखाई दे रहा था। तो मूलजी ने एक पत्थर कुएं में फेंका तो काई थोड़ी हट गई। मूलजी को पत्थर डालते देख और सब बालक भी कुएं में पत्थर डालने लगे....लगातार पत्थर डालने से सारी हरी काई एक ओर हो गई और नीचे का साफ पानी दिखाई देने लगा। तब मूलजी ने सब बालकों को कहा कि ''देखो, पानी अब साफ दिखाई दे रहा है।'' तब मित्रों ने कहा कि ''हाँ, अब तो पानी में अपना मुँह भी दिखाई दे रहा है।'' इस बात को लेकर मूलजी ने समझाया—पानी के ऊपर काई जम गई थी तो पानी असल में जैसा है वैसा नहीं दिखाई पड़ता था, वैसे ही अपना जीवात्मा माया के आवरण से ढक गया है सो जैसा है वैसा दिखाई नहीं पड़ता। इसलिए ही भगवान का संबंध जीवात्मा को हो नहीं पाता। मूलजी के मित्र उनके मुंह की ओर ताक रहे थे। आठ-दस वर्ष की आयु के बालक भला जीव, माया, भगवान की बातें कहां समझ पाते पर तब भी एक बालक ने पूछा कि मूलजी तुम भगवान की बहुत बातें करते हो पर तुमने भगवान देखे हैं? तब मूलजी ने कहा ''मैं तो भगवान को अखंड देखता हूँ। अभी वे वन में विचरण कर रहे हैं। थोड़े समय बाद वे यहाँ पधारेंगे, आप सभी को दर्शन होंगे और आप उन्हें पहचानोगे तो आनन्द आयेगा।''

इस प्रकार गुणातीतानन्दस्वामी ने बाल्यकाल में ही अपनी दिव्य छवि स्पष्ट कर दी थी। ऊपर से देखने में महाराज व स्वामी का संबंध गुरु शिष्य का था पर दोनों की अनादि की पहचान थी....गुरु भी अद्वितीय और शिष्य भी अद्वितीय....

अतः हम यही कह सकते हैं पूर्ण पुरुषोत्तम के स्वरूप को समझने अक्षरब्रह्म के स्वरूप को समझना अत्यंत आवश्यक है ही, ब्रह्मरूप होना—अक्षररूप होना जरूरी है।

—क्रमशः

....और श्रीजी महाराज ने कहा—

...मेरे मन में तो ऐसा होता है कि यह बात न कहूं, किन्तु आप हमारे हैं, इसलिए सोचता हूं कि कह ही दूं। और इस बात को समझ कर जो आचरण करता है वही 'मुक्त' हो जाता है। उसके बिना तो चार वेद, षट्शास्त्र, आठारह पुराण एवं भारतादि इतिहास के अध्ययन से तथा उनके अर्थ जानने से या उनके श्रवण करने पर कोई 'मुक्त' नहीं हो पाता। यह बात कहता हूँ उसे सुनिये।

बाहर चाहे कितना ही उपाधि (झंझट) हो किन्तु उससे यदि मन में संकल्प न हो तो हमें उसका सन्ताप नहीं है। किन्तु अन्तःकरण में पदार्थ का यदि लेशमात्र भी संकल्प हो जाये, तो उसका त्याग करने पर ही शान्ति होती है। ऐसा हमारा स्वभाव है।

इसलिए हमने हृदय में विचार किया कि भगवान के भक्त के हृदय में विक्षेप होने का क्या कारण होता है? मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार के सामने देखा तो हमें ऐसा लगा कि यह अन्तः करण उद्वेग का कारण नहीं हैं। अन्तःकरण में तो भगवान के स्वरूप के निश्चय का या आत्मज्ञान का बल रहने का कारण अन्तःकरण में एक लापरवाही सी रहती कि—'भगवान मिल गये हैं सो अब कुछ करना शेष नहीं रहता है।' इस तरह की गफलत रहती है। इतना ही अन्तःकरण का दोष है। और अधिक दोष तो पञ्चज्ञानेन्द्रियों का है।

गढ़डा प्रथम प्रकरण-18

बुधवार, 7 दिसम्बर 1819

क्रमशः

स्वामी की बातें

51. सौ जन्म के बाद भी यह बात समझ नहीं पाओगे, सो आज समझ लेना। दो अच्छे साधु और तीन अच्छे हरिभक्तों के साथ आत्मीयतापूर्वक संबंध बांधना। इससे आप सत्संग से कभी हटोगे नहीं। कामलोभादि थोड़े बहुत भीतर रह भी गये तो चिंता नहीं है। वचनामृत में महाराज ने कहा—'काम, लोभ का संकल्प न हो किन्तु भगवान के भक्त के साथ आत्मीयतापूर्ण संबंध नहीं हुआ तो, इससे क्या अर्थ? सही संबंध के अभाव से असुर होंगे।' अतः भगवान के अच्छे भक्त के साथ आत्मीयता से जुड़ जाना ही मुख्य समझने की बात है। अन्य और बातें करते हैं इसका प्रयोजन तो यह है कि यह प्रथा चलानी है और नियम पालन करवाने हैं। (अर्थात् असली साधन तो भगवान के भक्त के साथ जुड़ जाना यही है)।

प्र.-1, 238

52. प्रतिदिन लाख रुपये (चंदा) लाता हो किन्तु सत्संग की निन्दा करता हो तो वह हमें नहीं जंचता है; और यदि कोई सोता ही रहे और खावे, पर भगवान के भक्त की महिमा गाता हो तो उसकी सेवा मैं करवाऊंगा; ऐसा मेरा स्वभाव है। प्र.-1, 239

53. शास्त्र में भगवान को समदर्शी कहा है किन्तु यह सच नहीं है, क्योंकि भगवान तो भक्त के हैं, अभक्त के नहीं है। अतः भगवान समदर्शी नहीं हैं।

प्र.-1, 253

54. भगवान अपने भक्तों में पात्रता के अनुसार निवास करते हैं। जितना भगवदी (भक्त) महान होगा इतने ही वे उसमें विशेष रूप से रहते हैं। प्र. 1, 254

Regd. No. D (DN) 655

55. उलझन आवे तब क्या करना? इस प्रश्न का उत्तर है–'स्वामिनारायण, स्वामिनारायण भजन करना। इससे हर प्रकार की व्यग्रता, उदासीनता टल जाती है।' प्र. 1, 274

56. हमने कोई अच्छा काम किया हो और हमें उस बात का मान आ गया हो इसलिए बड़े संत यदि कहें कि यह काम अच्छा नहीं हुआ– बिगड़ गया, तब भी प्रसन्न रहना चाहिए। क्योंकि हमें तो बड़े संत की प्रक्रिया समझ में आयेगी नहीं और बड़े संत तो दीर्घदर्शी होते हैं। वे तो जानी जान है। आगे जो होने वाला है उसे देख लेते हैं। प्र. 1, 280

57. करोड़ों काम छोड़ेंगे तब भगवान की कथा होगी, और करोड़ों काम छोड़ेगे तब भगवान सम्बन्धी बातें होगी और ध्यान तो इसके बाद होता है। प्र.1, 283

58. भगवान के भक्त को तीन में से एक प्रकार का ध्यान तो होता है। एक–निश्चयरूप ध्यान, दूसरा–'मुझे साधु के पास जाना है' यह अनुसन्धान रूप ध्यान और तीसरा–'मैं भगवान का भक्त हूँ–' यह वरन् मूर्ति में तेलधारा वृत्ति रहे यह तो स्वरूपानन्दस्वामी जैसे की बात है।
प्र-1, 284

59. कोटि तप, कोटि जप, कोटि व्रत, कोटि दान और कोटि यज्ञ करके जिस भगवान और साधु को पाना था वे आज हमें मिले हैं।
प्र-1, 296

60. किसी भी प्रकार की चिन्ता हो तो भगवान को सौंप देना। हम तो निर्बल हैं और वे बलवान है, सो वे रक्षा करने समर्थ हैं। जैसी प्रह्लादजी की रक्षा की थी वैसे कई प्रकार से रक्षा करते हैं।
प्र-1, 310

व्रतोत्सवसूची

1.	दि.	14.10.85	सोमवार	नवरात्रे प्रारंभ
2.	दि.	22.10.85	मंगलवार	नवमी, श्री हरिजयंती
3.	दि.	23.10.85	बुधवार	विजया दशमी-दशहरा
4.	दि.	24.10.85	गुरुवार	एकादशी, व्रत
5.	दि.	27.10.85	रविवार	शरद्पूर्णिमा, मू.अ.मू. गुणातीतानन्दस्वामी का प्रागट्य दिन– द्विशताब्दी, प.पू.प्र.ब्र. स्व. हरिप्रसादस्वामीजी का दीक्षा दिन
6.	दि.	30.10.85	बुधवार	अ.मू.मु.पू. जागास्वामी जन्मजयंती
7.	दि.	9.11.85	शनि वार	एकादशी, व्रत
8.	दि.	10.11.85	रविवार	धनत्रयोदशी
9.	दि.	12.11.85	मंगलवार	दीवाली
10.	दि.	13.11.85	बुधवार	विक्रमसंवत् 2038 का नूतन वर्ष प्रारंभ, अन्नकूटोत्सव
11.	दि.	14.11.85	गुरुवार	भैयादूज
12.	दि.	16.11.85	शनिवार	लाभपंचमी

PUBLISHED BY SADHU MUKUNDJIVANDAS FOR YOGI DIVINE SOCIETY,
A 103, Ashokvihar-III, Delhi-110 052. India, Tel. 7128838
Printed at R.P., Printers, Shahadra, Delhi-110032